शांकर वेदान्त में माया का स्वरूप

प्रीति वर्मा*

डॉ. राधाकृष्णन के मतानुसार शंकर के दर्शन में माया शब्द छः अर्थों में प्रयुक्त हुआ है।

1 विश्व स्वतः अपनी व्याख्या करने में असमर्थ है, जिसके फलस्वरूप विश्व का परतन्त्र रूप दिखाई पड़ता है जिसकी व्याख्या माया के द्वारा हुई है।

2 ब्रह्म और जगत के सम्बन्ध की व्याख्या के लिए माया का प्रयोग हुआ है।

3 ब्रह्म विश्व का कारण कहा जाता है क्योंकि विश्व ब्रह्म पर आरोपित किया गया है। विश्व जो ब्रह्म पर आश्रित है, माया कहा जाता है।

4 ब्रह्म का जगत में दिखाई पड़ना भी माया कहा जाता है।

5 ईश्वर में अपनी अभिव्यक्ति की शक्ति निहित है, जिसे माया कहा जाता है।

6 ईश्वर की शक्ति का रूपान्तर विश्व के रूप में होता है, जिसे माया कहा जाता है।[1]

शांकरभाष्य में माया का स्वरूप इस प्रकार बताया गया है –

अविद्यात्मिका हि बीजशक्तिः अव्यक्तशब्दनिर्देश्या परमेश्वराश्रया मायामयी महासुप्तिः, यस्यां स्वरूपप्रतिबोधरहिताः शेरते संसारिणो जीवाः[2]।

आचार्य शंकर के दर्शन में माया और अविद्या का प्रयोग एक ही अर्थ में हुआ है। जिस प्रकार आत्मा और ब्रह्म में तादात्म्य है, उसी प्रकार माया और अविद्या अभिन्न है। शंकर ने माया, अविद्या, अभ्यास, अध्यारोप, भ्रान्ति, विवर्त, भ्रम, नामरूप, अव्यक्त, मूलप्रकृति आदि शब्दों का एक ही अर्थ में प्रयोग किया है। परन्तु बाद के वेदान्तियों ने माया और अविद्या में भेद किया है। उनका कहना है कि माया भावात्मक है, जबकि अविद्या निषेधात्मक है। माया को भावात्मक इसलिए कहा जाता है कि माया द्वारा ब्रह्म सम्पूर्ण विश्व का प्रदर्शन करता है। माया विश्व को प्रस्थापित करती है। इसके विपरीत अविद्या ज्ञान के अभाव को संकेत करने के कारण निषेधात्मक है। माया और अविद्या में दूसरा अंतर यह है कि माया ईश्वर को प्रभावित करती है जबकि अविद्या जीव को प्रभावित करती है। माया और अविद्या में तीसरा अंतर यह है कि माया का निर्माण मूलतः सत्वगुण से हुआ है,

असिस्टेंट प्रोफेसर (तदर्थ) मैत्रेयी महाविद्यालय, दिल्ली विश्वविद्यालय नई दिल्ली–

जबकि अविद्या का निर्माण सत्व, रज और तम इन तीनों गुणों से हुआ है। माया का स्वरूप सात्विक है, परन्तु अविद्या का स्वरूप त्रिगुणात्मक है।

माया का निवासस्थान

आचार्य शंकर का कहना है कि माया ब्रह्म में निवास करती है। यद्यपि माया आश्रय ब्रह्म है, फिर भी ब्रह्म माया से प्रभावित नहीं होता है। जिस प्रकार रूपहीन आकाश पर आरोपित नीले रंग का प्रभाव आकाश पर नहीं पड़ता तथा जिस प्रकार जादूगर जादू की प्रवीणता से स्वयं नहीं प्रभावित होता, उसी प्रकार माया भी ब्रह्म को प्रभावित करने में असफल रहती है। माया का निवासस्थान ब्रह्म में है। ब्रह्म अनादि है। अतः ब्रह्म की तरह माया भी अनादि है। माया और ब्रह्म में तादात्म्य का संबंध है।

माया ब्रह्म की शक्ति है, जिसके आधार पर वह भविष्य का निर्माण करता है। जिस प्रकार जादूगर जादू के विभिन्न प्रकार के खेल दिखाता है, उसी प्रकार ब्रह्म माया की शक्ति से विश्व का नाना रूपात्मक रूप उपस्थित करता है। माया के कारण निष्क्रिय ब्रह्म सक्रिय हो जाता है। माया सहित ब्रह्म ही ईश्वर है।

'माया' शब्द की व्युत्पत्ति

'माया' संस्कृत का एक सारगर्भित शब्द है। विश्व की किसी दूसरी भाषा में इसका पर्याय नहीं है। व्युत्पत्ति कई प्रकार से की जाती है। सर्वप्रथम 'माया' शब्द 'मा' धातु से बना है। 'मीयते या सा माया' जो नापा जा सकता है, वह माया है अथवा 'मीयते अनया सा माया' अर्थात जिससे नापा जाता है, वह माया है। इस प्रकार माया एक मानदण्ड है, एक माप है। आधुनिक विज्ञान ने माना है कि जो माप योग्य है, वही वास्तविक है और जो वास्तविक है, वह माप योग्य है। इस मत का आदिरूप मायावाद देता है जो कहता है कि जो कुछ मेय (ज्ञेय विषय) है, वह वास्तविक (माया) है और जो वास्तविक (माया) है वह ज्ञेय है। यहां प्रश्न उठता है कि माया को मेय या ज्ञेय कैस कहा जा सकता है क्योंकि वह दुर्ज्ञेय और अचिन्त्य मानी गई है। इसका उत्तर इस संदर्भ में यह कह कर दिया जा सकता है कि माया को दुर्ज्ञेय या अचिन्त्य इसलिए कहा जाता है, उसका वर्णन इदमित्थम्(यह ऐसा ही है) में नहीं किया जा सकता है। कुछ भी हो जो मेय या ज्ञेय है, वह वास्तविक (माया) है। जानना एक प्रकार का जांच–पड़ताल करना है। अनेक प्रकार से विषयों को जाना जा सकता है। इन प्रकारों में से कोई एक प्रकार ही अंतिम रूप से निर्णायक सत्य नहीं है और न इन प्रकारों की कोई इयत्ता है। इसलिए मायिक विषयों को दुर्ज्ञेय या अचिन्त्य कहा जाता है। वास्तविक (माया) परमार्थ सत्य नहीं है, वह परमार्थ सत्य का एक आभास मात्र है।

दूसरे, ब्रह्मवैवर्त पुराण के 27 वें अध्याय में माया की व्युत्पत्ति इस प्रकार

की गई है –

माश्च मोहार्थ वचनः याश्च प्रापण वाचकः ।
तां प्रापयति या नित्य सा माया प्रकीर्तिता । ।

मा' अर्थ मोह है और या' का अर्थ प्रापण (प्राप्त कराने वाला) है, जो मोह को प्राप्त कराता है, वह माया है। इस दृष्टि से माया के साथ मोह शब्द भी जुड़ गया है और लोक–व्यवहार में मोह–माया और माया–मोह जैसे शब्द प्रचलित हो गए हैं, किन्तु ये शब्द वास्तव में माया का अर्थ बताते हैं और माया का संबंध मोह से जोड़ते हैं, जिससे लोग मुग्ध होते हैं (मुह्यन्ति), वह मोह–माया या माया है।

तीसरे, मोह के साथ जुड़ जाने से माया का अर्थ अज्ञान हो जाता है। अज्ञान के दो प्रकार होते हैं–विद्या और अविद्या। कभी–कभी विद्या' को भक्ति और अविद्या को कर्म कहा जाता है, किंतु वास्तव में यह दोनों ही अज्ञान है और माया के अंतर्गत हैं। माया का अर्थ अज्ञान कैसे हुआ? इसमें प्रवृत्ति–निमित्त तो मायावाद का दर्शन ही है, परंतु इसका कुछ व्युत्पत्ति–निमित्त भी जान पड़ता है। माया मापना या नापना है, यह पहले बताया जा चुका है। किंतु मापना एक प्रकार का ज्ञान है, जो असंभव को संभव बनाने का प्रयास है। जिसे मापना है, वह अप्रमेय या अमिता है और जितना मापा जाता है, वह अल्प है। इस दृष्टि से मापना ज्ञान नहीं, अज्ञान है। अतएव अर्थ दृष्टि से माया को अज्ञान कहा जाता है। जो अप्रमेय या अमेय कहा जाता है, उसे मापना या जानना (ज्ञान) अज्ञान नहीं तो और क्या है? सदैव कुछ न कुछ जानने के लिए शेष बचा ही रहता है। इस कारण जो कुछ ज्ञान है, वह माया ही तो है। मा याति माया अर्थात जो निषेध को प्राप्त हो जाता है, वह माया है। विषय–ज्ञान निषिद्ध होता रहता है, अतः वह माया है।

चौथे, माया की व्युत्पत्ति करते हुए शैवदर्शन में कहा गया है कि मा धातु और आङ् उपसर्ग तथा या धातु और घञ्प्रत्यय के योग से माया शब्द बनता है। इस प्रकार माया मा+आ+या+घञ् । जो मा है और आया है, यह माया है। इसकी व्याख्या करते हुए कहा गया है –

मात्यस्यां शक्त्यात्मना प्रलये सर्व जगत्सृष्टो व्यक्तिमायातीति माया'

अर्थात्प्रलय दशा में जिसमें समस्त जगत शक्ति रूप में नापा जाता है और सृष्टि दशा में जो अभिव्यक्ति होती है, वह माया है। इस प्रकार माया का अर्थ जगत की मूल प्रकृति है।

पांचवे, माध्व वेदांत में माया की व्युत्पत्ति मय शब्द से की गई है। मय शब्द में अर्थ प्रकृष्ट होता है। मय शब्द में स्वार्थ में अण्प्रत्यय लगने से माय बनता है। माय का अर्थ मय ही है। फिर भी माय शब्द में टाप्प्रत्यय लगने से माया बनता है। अर्थात माय शब्द का ही रूप स्त्रीलिंग में माया है। इस प्रकार मय शब्द के ही

अर्थ में माया का प्रयोग होता है।

मायावाद

यद्यपि माया शब्द का प्रयोग प्रायः सभी दर्शनों में हुआ है तथापि मायावाद केवल अद्वैत वेदांत का सिद्धांत है। अद्वैत वेदांत से भिन्न जितने दर्शन हैं, वे माया का प्रयोग इंद्रजाल, असत् भ्रम, स्वप्न, रहस्य और मोह के अर्थ में करते हैं, किन्तु अद्वैत वेदांत माया का प्रयोग इन अर्थों में नहीं करता है। वहां माया का अर्थ मुख्यतः तीन अर्थों में होता है। जिसका वर्णन विद्यारण्य स्वामी ने पंचदशी में इस प्रकार किया है –

तुच्छा निर्वचनीया चा वास्तवी चेत्यसौ त्रिधा।
ज्ञेया माया त्रिभिबौधैः श्रौतयोक्तिलौकिकैः।।

अर्थात् माया को तुच्छ, अनिर्वचनीय और वास्तविक जानना चाहिए। श्रुति से ज्ञात होता है कि माया तुच्छ है, युक्ति से ज्ञात होता है कि माया अनिर्वचनीय है अर्थात सत्–असत् से विलक्षण है और प्रत्यक्ष से ज्ञात होता है कि माया वास्तविक है। इस प्रकार माया की अवधारणा में 1.) तुच्छ अर्थात अलीकता या नितांत असत् 2.) अनिर्वचनीयता या सत्–असत् से विलक्षणत्त्व और 3.) वास्तविकता ये तीन प्रत्यय संपुटित हैं। पारमार्थिक दृष्टि से जगत असत् है क्योंकि परमार्थतः एकमात्र ब्रह्म ही सत्य है। व्यावहारिक दृष्टि से जगत सत् है और जगत का अस्तित्व भ्रम या स्वप्न के समान नहीं है। संक्षेपतः अद्वैत वेदांत में तीन प्रकार के सत् का विवेचन है – 1)प्रातिभासिक सत् 2) व्यवहारिक सत् और 3) पारमार्थिक सत्।

प्रातिभासिक सत् वह है जो भासित होता है, किंतु जो परिवर्ती अनुभव से गलत सिद्ध हो जाता है। स्वप्नलोक और भ्रम के विषय प्रातिभासिक सत् हैं क्योंकि वह वह भासित होते हैं और फिर अन्य अनुभवों से गलत सिद्ध हो जाते हैं।

जगत की वस्तुओं जैसे घट, पट आदि का अस्तित्व व्यावहारिक है। वे केवल प्रतीयमान नहीं है, उनमें एक नियम और सातत्य है। कम से कम उनमें कार्य–कारण संबंध है। परंतु इनका अस्तित्व अविनाशी और नित्य नहीं है। वे सब उत्पन्न होती हैं और नष्ट होती हैं । उनके मूल में एक सत्ता है, जो उत्पत्ति और विनाश से रहित है। यही सत्ता ब्रह्म है। ब्रह्म का अस्तित्व नित्य और एकरस है। उसके संदर्भ में जगत की वस्तुओं का अस्तित्व अनित्य और असत् है। इस कारण यदि ब्रह्म सत् है तो जगत मिथ्या है। इस दृष्टि से परमार्थतः केवल ब्रह्म को ही सत् माना जाता है। ब्रह्म से भिन्न जो कुछ है, वह सब मिथ्या माना जाता है।

मिथ्यात्व असत् या असत्य का पर्यायवाची नहीं है। वास्तव में मिथ्यात्व माया का पर्यायवाची है। जगत मिथ्या है, इस कथन का अर्थ यह नहीं है कि जगत भ्रम है या जगत असत् है। इसका अर्थ केवल निम्नलिखित है –

1. ब्रह्म की अपेक्षा जगत असत् है।

2. ब्रह्म ज्ञान होने पर जगत का ज्ञान निवृत हो जाता है।
3. तर्कतः हम जगत को न तो सत् कह सकते हैं और ना ही असत्। वह इनसे विलक्षण है।
4. जगत की सत्ता त्रैकालिक निषेध का प्रतियोगी है।
5. जगत की सत्ता स्वाश्रयनिष्ठ अत्यन्ताभाव का प्रतियोगी है।

इन अर्थों के अतिरिक्त अद्वैत वेदांत में माया या मिथ्यात्व का कोई अन्य अर्थ नहीं है। यदि कोई अन्य अर्थ करता है तो वह अर्थान्तर नामक दोष से ग्रसित है। ब्रह्म की अद्वैत सिद्धि का आधार मायावाद में ही प्रतिष्ठित है। आचार्य शंकर का मायावाद भारतीय दर्शन में उतना ही प्रसिद्ध है, जितना कि उनका अद्वैतवाद। निरपेक्ष एवं निर्गुण ब्रह्म से जगत की उत्पत्ति किस प्रकार होती है तथा एक से अनेकता का आविर्भाव कैसे होता है, इन समस्याओं का समाधान माया के द्वारा ही होता है। अतः प्रस्थानत्रयी पर भाष्य लिखते समय आचार्य ने माया की सुसंगत एवं सुसंबद्ध व्याख्या दी है। उपनिषद् के सिद्धांतों के मूल तात्पर्य को स्पष्ट करते हुए आचार्य ने विश्व की विविधता का औचित्य माया के द्वारा ही सिद्ध किया है। आचार्य शंकर ने माया तथा अविद्या शब्दों का प्रयोग समानार्थक रूप से किया है। परंतु परवर्ती दार्शनिकों ने इन दोनों शब्दों में सूक्ष्म अर्थभेद की कल्पना की है। आचार्य के माया से तात्पर्य परमेश्वर की बीज शक्ति से है। माया रहित होने पर परमेश्वर में प्रवृत्ति नहीं होती है और न वह जगत की सृष्टि करता है। यह अविद्यात्मिका बीजशक्ति अव्यक्त कही जाती है। यह परमेश्वर में आश्रित रहने वाली महासुप्तिनिरूपिणी है, जिसमें अपने स्वरूप को न जानने वाले सांसारिक जीव शयन किया करते हैं–

अविद्यात्मिका हि बीजशक्तिरव्यक्तशब्द निर्देश्या परमेश्वराश्रया मायामया महासुप्तिः, यस्यां स्वरूपप्रतिबोध रहिता शेरते संसारिणो जीवाः[3]।

आचार्य ने यह सिद्ध किया है कि माया ब्रह्म से पृथक नहीं, वरन अभिन्न है। जिस प्रकार अग्नि से उसकी दाहकता शक्ति को पृथक नहीं किया जा सकता है, उसी प्रकार माया ब्रह्म से अभिन्न है। त्रिगुणात्मिका माया ज्ञानविरोधी भावरूप पदार्थ है शंकराचार्य ने माया का स्वरूप दिखलाते समय लिखा है कि माया ब्रह्म की अव्यक्त शक्ति है, जिसके आदि का पता चलता ही नहीं है, वह त्रिगुण से युक्त अविद्यारूपिणी है। उसका पता उसके कार्यों से चलता है। वही इस जगत को उत्पन्न करती है –

अव्यक्तनाम्नी परमेशशक्तिरनाद्यविद्या त्रिगुणात्मिका परा।
कार्यानुमेया सुधियैव माया यथा जगत् सर्वमिदं प्रसूयते[4]।।

सांख्य की प्रकृति और अद्वैत की माया में साम्य–वैषम्य

1. सांख्य दर्शन में विश्व की अवस्था के लिए प्रकृति को माना गया है। प्रकृति से ही नाना रूपात्मक जगत की व्याख्या होती है। संपूर्ण विश्व प्रकृति का रूपान्तरित रूप है। शंकर के दर्शन में माया के आधार पर विश्व की विविधता की व्याख्या की जाती है। माया ही नाना रूपात्मक जगत को उपस्थित करती है।
2. शंकर की माया और सांख्य की प्रकृति में दूसरा साम्य यह है कि माया और प्रकृति दोनों का निर्माण सत्व, रजस और तमस गुणों के संयोजन से हो पाया है। शंकर की माया सांख्य की प्रकृति की तरह त्रिगुणात्मक है।
3. शंकर की माया और सांख्य की प्रकृति में तीसरा साम्य यह है कि दोनों भौतिक एवं अचेतन हैं। सांख्य की प्रकृति की तरह शंकर की माया भी जड़ है।
4. शंकर की माया और सांख्य की माया में चौथा साम्य यह है कि दोनों मोक्ष की प्राप्ति में बाधक प्रतीत होते हैं। पुरुष प्रकृति से भिन्न है, परंतु अज्ञान के कारण वह प्र.ति से अपनापन का संबंध उपस्थापित कर लेता है। यही बंधन है। मोक्ष की प्राप्ति तभी हो सकती है, जब प्रकृति अपने को पुरुष से भिन्न होने का ज्ञान पा जाए। मोक्ष के लिए पुरुष प्रकृति से पृथक्करण की मांग करता है। शंकर के अनुसार भी मोक्ष की प्राप्ति तभी हो सकती है, जब अविद्या का जो माया का ही दूसरा रूप है, अंत हो जाए। आत्मा मुक्त है, परंतु अविद्या के कारण वह बंधन ग्रस्त हो जाती है।

उपरोक्त समानताओं के होने पर भी माया और प्रकृति में अनेक अंतर हैं –

1. माया और प्रकृति में पहला अंतर यह है कि माया को परतंत्र माना गया है जबकि प्रकृति स्वतंत्र हैं। माया का आश्रय–स्थान ब्रह्म या जीव होता है। परन्तु प्र.ति को अपने अस्तित्व के लिए किसी दूसरी सत्ता की अपेक्षा नहीं होती है।
2. माया और प्रकृति में दूसरा भेद यह है कि प्रकृति यथार्थ है, जबकि माया अयथार्थ। सांख्य पुरुष और प्रकृति को यथार्थ मानने के कारण द्वैतवादी कहा जाता है, परंतु शंकर के दर्शन में ब्रह्म को छोड़कर सभी विषयों को असत्य माना गया है।

माया की शक्तियां और कार्य

माया की दो शक्तियां हैं – आवरण तथा विक्षेप –

शक्तिद्वयं हि मायाया विक्षेपावृतिरूपकम्।
विक्षेपशक्तिर्लिङ्गादिब्रह्माण्डान्तं जगत् सृजेत्।
अर्न्तश्ययोर्भेदं बहिश्च ब्रह्मसर्गयोः।
आवृणोत्यपरा शक्तिः सा संसारस्य कारणम्।।[5]

इन्हीं की सहायता से वस्तुभूत ब्रह्म के वास्तव रूप को ढककर उसमें अवस्तुरूप जगत् की प्रकृति का उदय होता है।

माया के मूलतः दो कार्य हैं। माया वस्तुओं के वास्तविक रूप को ढक लेती है। माया के कारण वस्तु पर आवरण पड़ जाता है। जिस प्रकार रस्सी में दिखाई

देने वाला सांप रस्सी के वास्तविक स्वरूप पर पर्दा डाल देता है, उसी प्रकार माया सत्य पर पर्दा डाल देती है। माया का यह निषेधात्मक कार्य है। माया के इस कार्य को आवरण कहा जाता है।

माया का दूसरा कार्य है कि वह सत्य के स्थान पर दूसरी वस्तु को उपस्थित करती है। माया सिर्फ रस्सी के वास्तविक स्वरूप को ही नहीं ढक लेती है, बल्कि रस्सी के स्थान पर सांप की प्रकृति भी उपस्थित करती है। माया का यह भावात्मक कार्य है। माया के इस कार्य में भी को विक्षेप कहा जाता है। माया अपने निषेधात्मक कार्य के बल पर ब्रह्म को ढंक लेती है तथा अपने भावात्मक कार्य के बल पर ब्रह्म के स्थान पर नानारूपात्मक जगत को प्रस्थापित करती है। डॉ. राधाकृष्णन के शब्दों में सत्य पर पर्दा डालना और असत्य को प्रस्थापित करना माया के दो कार्य हैं।

माया की विशेषताएं

आचार्य शंकर के मतानुसार माया की अनेक विशेषताएं हैं। माया की मुख्य विशेषताओं का वर्णन इस प्रकार किया जा सकता है –

1. माया की पहली विशेषता यह है कि यह अध्यास रूप है। जहां जो वस्तु नहीं है, वहां उस वस्तु को कल्पित करना अध्यास कहा जाता है। जिस प्रकार रस्सी में सांप और सीपी में चांदी का आरोपण होता है, उसी प्रकार निर्गुण ब्रह्म में जगत अध्यासित हो जाता है, चूंकि अध्यास माया के कारण होता है, इसलिए माया को मूलाविद्या कहा जाता है।

2. माया की दूसरी विशेषता यह है कि माया विवर्तमात्र है। माया ब्रह्म का विवर्त है, जो व्यावहारिक जगत में दीख पड़ता है।

3. माया की तीसरी विशेषता यह है कि माया ब्रह्म की शक्ति है जिसके आधार पर वह नाना रूपात्मक जगत का खेल प्रदर्शन करता है। माया पूर्णतः ईश्वर से अभिन्न है।

4. माया की चौथी विशेषता यह है कि माया अनिर्वचनीय है, क्योंकि वह ना सत् है, न असत् है, न दोनों है। वह सत् नहीं है क्योंकि ब्रह्म से भिन्न उसकी कोई सत्ता नहीं है। वह असत् भी नहीं है क्योंकि वह नाना रूपात्मक जगत् को अवस्थित करता है। उसे सत् और असत् दोनों ही नहीं कहा जा सकता, क्योंकि वैसा कहना विरोधात्मक होगा। इसलिए माया को अनिर्वचनीय कहा गया है –

सन्नाप्यसन्नाऽप्युभयात्मिका नो भिन्नाप्यभिन्नेत्युभयात्मिका नो।
सांगाप्यनंगाप्युभयात्मिका नो महाद्भुताऽनिर्वचनीयरूपा।।[6]

5. माया की पांचवी विशेषता यह है कि इसका आश्रय स्थान ब्रह्म है, परन्तु ब्रह्म माया की अपूर्णता से अछूता रहता है। माया ब्रह्म को उसी प्रकार नहीं प्रभावित करती है, जिस प्रकार नीला रंग आकाश पर आरोपित होने पर भी आकाश को नहीं

प्रभावित करता है।

6. माया की छठी विशेषता यह है कि यह अस्थाई है। माया का अन्त ज्ञान से हो जाता है। जिस प्रकार रस्सी का ज्ञान होते ही रस्सी सर्प भ्रम नष्ट हो जाता है, उसी प्रकार ज्ञान का उदय होते ही माया का विनाश हो जाता है।

7. माया की सातवीं विशेषता यह है कि माया अनादि है। उसी से जगत की सृष्टि होती है। ईश्वर की शक्ति होने के कारण माया ईश्वर के समान अनादि है।

8. माया की अन्तिम विशेषता यह है कि माया भाव रूप है। इसे भावरूप दिखलाने के लिए कहा गया है कि यह केवल निषेधात्मक नहीं है। वास्तव में माया के दो पक्ष हैं – निषेधात्मक और भावात्मक। निषेधात्मक पक्ष में वह सत्य का आवरण है क्योंकि वह उस पर पर्दा डालता है। भावात्मक पक्ष में वह ब्रह्म के विक्षेप के रूप में जगत की सृष्टि करती है। वह अज्ञान तथा मिथ्याज्ञान दोनों है।

वास्तव में जो दृश्य है, वह मिथ्या है। जैसे रस्सी में सर्प का अनुभव मिथ्या है और जगत वैसे ही है। यह तर्क अद्वैत वेदान्तियों ने जगत के मिथ्यात्व की सिद्धि करने के लिए दिया है। इस पर वेदान्त के आलोचकों का कहना है कि अद्वैत वेदान्त में जगत का अस्तित्व भ्रमवत है, परन्तु उनका यह कथन समीचीन नहीं है। कारण 1.) जगत का अस्तित्व व्यावहारिक है और रस्सी में सर्प का अनुभव प्रातिभासिक है। व्यावहारिक और प्रातिभासिक सत्ता में भेद करने वाले अद्वैत वेदान्ती जगत और सर्प के अस्तित्व को एक जैसा नहीं कहते हैं। 2) दृश्यत्व जगत और रस्सी के सर्प दोनों का विधेय है। दृश्यत्व वास्तव में अनुभव का विषय है, परंतु वह सदा वर्तमान नहीं रहता है और अनुभव में आता रहता है। अर्थात दृश्यत्व आगन्तुक है। अनुभव में जो सदा वर्तमान तत्व है, वह द्रष्टा आत्मा है, जिसके बिना दृश्यत्व हो ही नहीं सकता है। इस कारण आत्मा की अपेक्षा अदृश्यत्व असत् है। परन्तु वह बन्ध्या पुत्र की भांति असत् नहीं है क्योंकि वह अनुभव में आता है और बंध्यापुत्र अनुभव में नहीं आ सकता। इस कारण जो दृश्य है, वह असत् नहीं है और आत्मा जैसा सत् भी नहीं है, इसलिए उसे सत् और असत् से विलक्षण कहा जाता है। इस विलक्षण को पारिभाषिक शब्दावली में अनिर्वचनीय कहा जाता है। अनिर्वचनीय इस प्रकार का वाचक नहीं है, न वह अवर्णनीयत्व का ही वाचक है। जब अद्वैतवेदान्ती रस्सी में सर्प के अनुभव को अनिर्वचनीय कहते हैं और उसको जगत् के दृश्यत्व के समान बताते हैं, तब वे भ्रम को वास्तविकता की ओर ले जा रहे हैं, न कि वास्तविकता को भ्रम कह रहे हैं। सर्प वैसे ही अनिर्वचनीय है, जैसे जगत। इसलिए सर्प भी वैसे ही असत् से दूर है, जैसे जगत। कुछ भी हो, मिथ्यात्व को असत् समझना और फिर मायावाद की आलोचना करना, अर्थान्तर कल्पना है। यही वह दोष है जिसको मायावाद के सभी आलोचकों ने, विशेषतः रामानुज और उनके अनुयायी वेदान्तदेशिक

ने किया है। इस कारण उनकी आलोचनाएं निराधार हैं। निरपेक्ष सत्तावाद की दृष्टि से तो वह अनिर्वचनीय है। स्पष्ट है कि मायावाद अद्वैत वेदान्त का जगत विषयक सिद्धान्त है। शंकराचार्य ने जगत का वर्णन करते हुए जन्माद्यस्य यतः सूत्र के भाष्य में कहा है कि यह जगत नाम रूप में व्याप्त है, अनेक कर्ता, भोक्ता से सुयुक्त है, देश, काल और निमित्त में प्रतिनियत है। क्रियाफल का आश्रय है और इसकी रचना मन से अचिन्त्य है। परन्तु इस जगत की उत्पत्ति तत्त्वतःसिद्ध नहीं की जा सकती। इस विषय में गौड़पाद कहते हैं –

सतो हि मायया जन्म युज्यते न तु तत्त्वतः ।
तत्त्वतो जायते यस्य जातं तस्य हि जायते ।।27।।
असतो मायया जन्म तत्त्वतो नैव युज्यते ।
वन्ध्यापुत्रो न तत्त्वेन मायया वाऽपि जायते ।।28।।

किसी वस्तु का जन्म सत् या असत् से तत्वतः नहीं हो सकता है। यदि उनका जन्म तत्त्वतःमाना जाए तो आत्माश्रय दोष तथा अनावस्था दोष होंगे और यदि असत् से उसका जन्म तत्त्वतः माना जाए तो असंभावना नामक दोष होगा। इसलिए किसी वस्तु की उत्पत्ति तत्वतः नहीं होती। फिर भी हमें वस्तु की उत्पत्ति दीख पड़ती है। इसलिए यह उत्पत्ति का एक ऐसा तथ्य है, जो सत् और असत् से विलक्षण है। यह प्रतीयमान है किन्तु सत्य नहीं है। इस कारण इसकी व्याख्या के लिए गौड़पाद ने अजातवाद या मायावाद को प्रस्तावित किया है। सत् से माया द्वारा इस जगत की उत्पत्ति होती है। आगे चलकर शंकराचार्य ने केवल उत्पत्ति को ही नहीं किंतु समस्त विषयों को माया मात्र कहा है। क्योंकि यह विषय अनुभव में आते हैं परन्तु सत्य नहीं है। इस प्रकार मायावाद जगत की व्याख्या है, विषयानुभव की व्याख्या है।

उपसंहार

शंकर वेदांत का मुख्य सिद्धांत केवल अद्वैतवाद है। इस मत में परमार्थरूप से एकमात्र ब्रह्म की सत्यता स्वीकार की गयी है। जगत को भी ब्रह्म के रूप में ही माना गया है। उनका मायावाद असत्, कल्पना, स्वप्न इत्यादि की ओर इंगित नहीं करता, वरन एक ठोस आधार के रूप में है, एक शक्ति के रूप में है, जो ब्रह्म से पृथक् नहीं, बल्कि उससे अभिन्न है। इस अर्थ में वे वस्तुवादी से भी आगे बढ़े हुए जान पड़ते हैं। उन्होंने माया को अव्यक्त नाम्नी परमेश्वर शक्तिरूप कहकर परमात्मा की शक्ति का रूप दिया है। इस माया शक्ति के भी दो रूप हैं – एक आवरण शक्ति और दूसरा विक्षेप शक्ति। यह दोनों शक्तियां ही अविद्या और माया के व्यावहारिक भेद के सूचक हैं। आवरण शक्तिरूपा अविद्या जीव पर ऐसा आवरण डालती है कि अज्ञानवश जीव आत्मबोध करने में असमर्थ रहता है। विक्षेप शक्ति

द्वैत जगत की सृष्टि करती है। इस प्रकार विश्व मूलतः मायारूपिणी है। परन्तु आचार्य की यह माया शशकशृंगवत् असत् न होकर व्यावहारिक दृष्टि से सत् है। इसलिए मायिक जगत् की व्यावहारिक सत्ता एवं ब्रह्म में इसे आरोपित करना शंकर दर्शन की विशिष्टता है।

संदर्भ

1- Indian Philosophy Vol-&II p- 573&74
2 शरीरकभाष्य,(१/४/३)
3 शरीरकभाष्य, १
4 विवेक चूड़ामणि, श्लोक ११०
5 दृग्दृष्यविवेक, श्लोक १३–१५
6 विवेकचूड़ामणि, श्लोक १११